कथा अनन्ता की कहानियां–समालोचना के दायरे में

❑ डॉ. सत्यपाल श्रीवत्स*

डॉ. आदर्श रचित कहानी संग्रह 'कथा अनन्ता' केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा 2005 में पुरस्कृत कृति है। इसमें कुल 12 कहानियां संग्रहीत हैं। इसका समालोचनात्मक सर्वेक्षण इस प्रकार है–

'उखड़ा चिनार' इस संग्रह की पहली कहानी है। कश्मीर घाटी में नबे के दशक के प्रारम्भ में उग्रवाद की त्रासदी ने अपना जो घिनौना राक्षसी रूप दिखाना आरम्भ किया था उसी के शिकार सैकड़ों कश्मीरी पण्डित परिवारों ने विस्थापित होकर कश्मीर घाटी से जम्मू तथा भारत के अन्य भागों की ओर पलायन करना आरम्भ कर दिया था। प्रस्तुत कहानी में उग्रवाद की उसी त्रासदी और उसके घिनौने परिणामों की अभिव्यक्ति है। यद्यपि इसमें अनुभूति अधिकांशत: आयातित है तो भी कहानीकार ने अपने कुशल कहानी शिल्प-विधान से इसमें चमत्कृति भर दी है।

कहानी पढ़ते-पढ़ते कहानी के केन्द्र बिन्दु इसके नायक प्रो. राजदान के प्रति हमारी संवेदना भरसक उमड़ने लगती है, पर साथ ही पाठक के सामने जब यह प्रश्न बिच्छू के डंक के समान खड़ा हो जाता है कि पहले प्रो. राजदान जैसा उदात्त चरित्र वाला व्यक्ति जब इतना रोबीला और दृढ़ विचारों का था तो बाद में वह एकदम उग्रवाद से त्रस्त होकर असहाय और पंगुवत् होकर क्यों तड़प उठता है। क्या उसे अपने उन दो पुत्रों के मोह ने तो ऐसा नहीं बना दिया, जो अपने व्यापार-कारोबार तथा धन-संपत्ति की खातिर अपना मान-सम्मान और चरित्र तक सब कुछ उग्रवादियों के हवाले करके उनके आगे अति जलील होने की हद तक पहुँच कर पूरी तरह घुटने टेक देता है।

जब प्रो. राजदान अपने छोटे पुत्र सुनील के कहने पर उसी के साथ जम्मू से चलकर श्रीनगर की जवाहर नगर बस्ती में अपने द्वारा कुछ वर्ष पहले निर्मित घर में पहुँचता है तो उसे आस-पास के वातावरण में तथा घर में पुत्रों और बड़ी पुत्रवधू के व्यवहार में एक विचित्र बदलाव नज़र आता है, जिसे देखकर उसका मन अति विक्षुब्ध हो जाता है। इतना ही नहीं बल्कि नवरात्रों के पवित्र त्योहार के दिनों में भी जब अपने घर के नौकर को मेहमानों के लिए मछली, रोगनजोश और बिरयानी तैयार करते हुए देखता है तो उसका मन अति दुखी होने के साथ-साथ उन अपरिचित

* 45/5 रुपनगर हाऊसिंग कालोनी, जम्मू

मेहमानों के चरित्र के बारे में भी सन्देह से भर उठता है। इसीलिए वह जब सीढ़ियां चढ़ता हुआ घर की पहली मंजिल में स्थित मेहमानखाने की ओर जाता हुआ अपने बड़े पुत्र अशोक द्वारा रोका जाने पर भी उसे धक्के से पीछे धकेल कर ऊपर पहुँच ही जाता है तो मेहमानखाने में जो घृणित दृश्य देखता है उससे उसके मन में अचानक हुए गहरे आघात से असह्य पीड़ा होती है।

वहाँ बन्दूकों से लैस तीन उग्रवादी और उसकी बड़ी पुत्रवधू बैठे हुए हैं। तीनों उग्रवादियों के आगे मांस की थालियां और शराब से लबालब भरे गलास रखे हुए हैं। उसकी पुत्रवधू जिसकी कमर पर एक उग्रवादी का हाथ टिका हुआ है, उनके लिए साकी का काम कर रही है। प्रो. राजदान को देखते ही तीनों अपनी बन्दूकें उसकी ओर तान कर खड़े हो जाते हैं। उनमें से एक कड़क कर पूछता है-"ओय कौन है यह बुड्ढा?" तो उसकी पुत्रवधू बड़ी सहमी और मरी हुई आवाज में जब यह कहती है-"नहीं कुछ नहीं, हमारा हमसाया है" (पृ० 23) तो प्रो. राजदान की पीड़ा और भी तीव्र हो उठती है। उस हृदय विदारक एवं लज्जास्पद घिनौने दृश्य को देखते ही वह वहां से मुँह मोड़ कर जैसे ही सीढ़ियां उतरकर नीचे अशोक को खड़ा देखता है तो झट एक थप्पड़ उसके मुँह पर जड़ कर अपने घर से बाहर निकल कर अति दुखी मन से पागलों की तरह दर-दर भटकता हुआ कभी पैदल और कभी ट्रक से कई दिनों के बाद जम्मू में अपनी बहन जिगरी के घर पहुँच कर धड़ाम से गिर पड़ता है। अपने पुत्र अशोक और उसकी पत्नी के घिनौने कृत्य से वह इतना आहत हो जाता है कि उसका चरित्र पूर्णतया निर्बल, अशक्त और पंगु बनकर रह जाता है। वह न तो अपने पुत्र अशोक को अपना कारोबार समेट कर और मकान आदि अचल सम्पत्ति बेच कर या छोड़ कर जम्मू आने के लिए आदेश देने की हिम्मत जुटा पाता है और न ही उनके मान-सम्मान को बचाने के लिए प्रशासन-तन्त्र एवं सैन्यबल के आगे अपनी फरियाद तक पहुँचाने का उद्यम कर पाता है। इन्तिहा है उसकी चारित्रिक दुर्बलता की। परिणामत: इस कहानी को पढ़ते समय पाठक के मानसिक धरातल पर प्रो. राजदान के पुत्र अशोक और उसकी पत्नी द्वारा अपनी सम्पत्ति बचाने की खातिर अपना मान-सम्मान और चरित्र तक का बलिदान करते हुए जो घिनौना और शर्मनाक दृश्य उपस्थित किया गया है वह उसके लिए ऊब और वितृष्णा के सिवाय कुछ नहीं छोड़ता। इतना ही नहीं प्रो. राजदान द्वारा वह सब कुछ देखकर भी हिम्मत जुटाकर उसका कोई प्रतिकार ढूँढ़ पाने के प्रति निष्क्रियता का भाव ही नहीं बल्कि परिस्थितियों के आगे पराजय स्वीकार कर लेना भी पाठकों की सहानुभूति के लिए कुछ भी शेष नहीं रह जाता है। हां, कृष्ण राव द्वारा अपने विस्थापित बन्धुओं की सुख-सुविधा एवं अधिकारों के लिए अपनी भूख-प्यास और सुख को भी भुला देना उसके चरित्र को ऊपर उठाने में सहायक सिद्ध होता है। उसके कर्मठ चरित्र द्वारा ही हम

कहानी में स्वस्थ मोड़ आया हुआ देखते हैं। निश्चय ही कृष्ण राव का किरदार सराहनीय है। इस कहानी के आलोक में यही कहना होगा कि हम प्रायः इसी विश्वास को पाले हुए हैं कि साहित्य समाज का सही प्रतिबिम्ब होता है। पर यह तभी सम्भव है जब रचनाकार युगबोध के प्रति पूर्णतया सजग हो। यह ठीक है कि साहित्य और जीवन का गहरा सम्बन्ध होता है, परन्तु वैचारिक धरातल पर तो यह विश्वास उचित हो सकता है, परन्तु सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक धरातल पर कदापि उपयुक्त नहीं। इस विषय में डॉ. उमा शुकला का यह कथन उचित है-''जो यह कहते हैं कि वे अपने युग का चित्रण करते हैं, वे बगैर किसी मूल्य, आदर्श और भावुकता के समावेश के कला और कैमरे के भेद को नज़र अन्दाज़ करते हैं...कला का प्रयोजन प्रामाणिक शक्ति और सुन्दर कृतियां प्रस्तुत करना है, ताकि मनुष्य की चेतना को सीमातीत विस्तार दिया जा सके। दरअसल साहित्य अस्वीकृति नहीं बल्कि इस विशाल अस्वीकृति में स्वीकृति की ध्वनि है-नए मूल्यों का अन्वेषण और इन मूल्यों की फिर से स्थापना करना, जिसे समाज और राज्य के बहरे, गूंगे, स्वार्थरत, शक्ति-लोलुप अधिकारी अस्वीकार कर चुके हैं।''[1]

मीरपुरी मासी : इस संग्रह की यह दूसरी कहानी परिवारिक समस्याओं की अक्कासी करने वाली एक सामाजिक कहानी है। वैसे इसे हम शुद्ध पारिवारिक कहानी इस लिए नहीं कह सकते क्योंकि इस में मध्यावित्त समाज की जिस गम्भीर समस्या को उभारा गया है वह हमारी सामाजिक समस्या भी है। ऐसी स्थिति में यदि हम इस कहानी को 'पारिवारिक-सामाजिक' कहानी कहें तो उपयुक्त होगा। कहानी की कथावस्तु सहजरूप से अन्तर्बद्ध है क्योंकि इसमें आरम्भ, विकास और चरमावस्था का पूर्ण अनुशासित ढंग से निर्वाह हुआ है।

इस कहानी में मध्यवित्त परिवार के अन्तर्द्वन्द को जिस प्रकार चित्रित किया गया है, उससे हमारी संवेदना ऐसी समस्या से जूझने वाले सभी परिवारों के प्रति उजागर हो जाती है। इस प्रकार यह समस्या अर्थात् आर्थिक तंगी के कारण लड़कियों के सुशिक्षित और सुन्दर होने पर भी उनका विवाह न किया जा सकना।

मौसी-मौसा और उनकी दोनों बेटियों चंचल और वीणा के प्रति हमारी संवेदनात्मक सहानुभूति भरसक उमड़ आती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मौसी परिवार के चारों सदस्य हमारे आस-पास घूम-फिर कर अपनी कारुणिक व्यथा-दास्तान स्वयं ब्यान कर रहे हैं। जिनके पास पर्याप्त दहेज देने के लिए धन-सम्पत्ति न हो तो उनकी बेटियों के सुन्दर होने के साथ-साथ उच्च शिक्षा प्राप्त होने पर भी कोई ब्याहने के लिए तैयार नहीं। कैसी

1. *स्वातन्त्रयोत्तर भारती साहित्य में नारी का स्वरूप सं० श्रीधर शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (इलाहाबाद 1987 - पृ० 49)*

विड़म्बना है यह हमारे वर्तमान समाज की ? आखिर हमारा समाज किस अधः पतन के गर्त की ओर जा रहा है ? आश्चर्य ही नहीं अतिक्षोभ होता है, यह सब सोच कर स्थिति यथावत डावां-डोल ही बनी रहती है। अन्ततः वह अपने तौर यह निर्णय ले ही लेता है कि- ''मैं अपने जन्मदिन पर अपने मित्र जमील द्वारा भेंट की हुई पेपरमेशी के कामवाली ऐशट्रे और फैज़ एहमद की नज़मों का संग्रह तो हर कीमत पर ले ही जाऊँगा।''

उसी समय जब उसके घर प्रतिदिन दूध-देने वाला शफी आकर उनके द्वारा घर छोड़कर जाने का समाचार सुनता है तो उसकी सहसा आह ही निकल जाती है। वह इस संकट की घड़ी में अपने भीतर-ही-भीतर यह सोच कर दुःख एवं घुटन अनुभव करता है कि वह मास्टर जी की कोई सहायता नहीं कर पा रहा है। इसीलिए वह उनके द्वार पर बैठ कर फूट-फूट कर रोने लगता है। उस समय उसे बाकी घरों में अपना दूध न देने के कारण उसके बिगड़ जाने से होने वाली सम्भावित हानि की भी चिन्ता नहीं रहती है। फिर कुछ समय के बाद वह इतना भावुक हो जाता है कि अपनी जेब से रुपयों के नोटों का एक बड़ा बंडल निकाल कर बलपूर्वक मास्टर जी के हाथ में थमा कर कुछ सन्तोष महसूस करता है और कहता है-''देखो मास्टर जी, तुम मेरे बेटे जैसे हो। इस वक़्त आपको पैसों की सख़्त जरूरत होगी। इसे लेकर मेहरबानी कर के मुझे इज्ज़त बख़्श दो। जब हालात ठीक होंगे तो मैं माँग कर पैसे बापस ले लूँगा।'' पृ. 38

दूधिया शफी का ऐसा हमदर्दाना व्यवहार उसके चरित्र को चार चाँद लगा देता है।

यद्यपि शिल्प-विधान की दृष्टि से वह पूरी तरह परिस्थितियों का दास बन चुका है। इस कहानी की ~~असफल~~ कथावस्तु और कुछ मास्टर और शफी के प्रभावशाली वार्तालाप कहानी को सफल बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। तो भी कहानी के नायक द्वारा अपने को असहाय, अकेला तथा निष्क्रिय रूप में उपस्थित करना और इसीलिए परिस्थितियों के आगे हार मान कर घाटी से पलायन करने के सिवाय कुछ भी न सोच पाना उसके चरित्र की निर्बलता सिद्ध करता है। वह तो जहाँ तक भी सोचने लग पड़ता है-''मकान, पत्नी-पुत्र, माता-पिता सब बाद में; पहले अपनी जान'' (पृ० 34)

उसके स्वार्थ अनुप्राणित मानसिक पतन की और स्थिति हो भी क्या सकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि कहानी का नायक मास्टर उग्रवादी त्रासदी से इतना त्रस्त है कि उसे सरकारी तन्त्र, मित्र-बन्धु तथा भारतीय सेना आदि सभी निष्क्रिय एवं बौने प्रतीत होने लगते हैं। इसीलिए वह अपने आपको हर प्रकार से हताश अनुभव कर रहा है। उसकी ये कमजोरियां ही उसके चरित्र को बौना बना देती हैं। दूसरी ओर दूधिए शफी का चरित्र-चित्रण करने में कहानीकार को पूर्ण सफलता मिली है। एक साधारण एवं

अनपढ़ व्यक्ति में इतने प्रशस्य मानवीय मूल्य भी हो सकते हैं, समझकर कोई भी आश्चर्यचकित हुए बिना रह नहीं सकता। निःसन्देह शफी के चरित्र ने इस कहानी की गरिमा बढ़ा दी है। वह इसका जीवंत चरित्र है कि सब के लिए प्रेरणा बन सकता है।

यद्यपि इस कहानी में भी आयातीत अनुभूति को ही आधार बना कर कहानी का ताना-बाना बुना गया है तो भी चरित्र-चित्रण इतना मनोविश्लेषणात्मक है कि हमारी संवेदनात्मक सहानुभूति और प्रशंसा दोनों कहानी के पात्रों के साथ जुड़ जाते हैं।

'बर्फीला तूफान'

बाल-मनोविज्ञान पर आधारित यह कहानी इस संग्रह की सफल कहानियों में से एक है।

मैडम कुमार और पिंकू का चरित्र-चित्रण कहानीकार ने जिस सहजता और स्वाभाविकता से किया है उसकी जितनी प्रशंसा की जाए कम है। कहानी पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है कि मानो मैडम कुमार और पिंकू हमारे सामने बातें कर रहे हैं, हँस रहे हैं, लिख-पढ़ रहे हैं, और टिफन खोलकर खा-पी रहे हैं इत्यादि।

मैडम कुमार में बाल-मनोविज्ञान को बारीकी से समझने की इतनी सूझ-बूझ है कि वह उनके मनोभावों को ऐसी कोमलता और सहजता से पकड़कर ऐसा मोड़ देती है कि बच्चे के व्यक्तित्व की नींव में मानवीय संवेदनाओं के ऊर्जस्वी गुणों के विकसित होने का रास्ता हमवार हो जाता है।

हम कहानीकार को इस सन्दर्भ में बधाई दिए बिना नहीं रह सकते। जिसने इन चरित्रों का सृजन करके अपनी सफल कहानी कला का प्रदर्शन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कहानीकार स्वयं बाल-मनोविज्ञान का कुशल पारखी है। वस्तुतः मैडम कुमार ही इस कहानी का केन्द्र बिन्दु हैं जो एक आदर्श पत्नी के साथ-साथ आदर्श अध्यापिका भी हैं। वही अपने पति के लिए सदा प्रेरणा स्त्रोत का काम करती हैं और जहाँ तक कि उसके पति द्वारा पर्वतारोहण वाला बहादुराना कार्य अपनाने के पीछे भी मैडम कुमार की ही प्रेरणा काम करती रही है और उसकी अचानक पर्वत से फिसल जाने से मृत्यु हो जाने पर उसकी याद को अपने भावी जीवन के लिए प्रेरणा मान कर परिस्थितियों के साथ समझौता करने को तैयार भी हो जाती है। इसीलिए कहती है–"कुमार के उत्साह की कभी मैं प्रेरणा हुआ करती थी। आज उसकी याद मेरी प्रेरणा है।"

"संघर्ष का दूसरा नाम जीवन है। मैंने चण्डीगढ़ के एक कॉलेज में लेक्चरशिप ज्वाहन कर ली है। पिंकू जैसे मासूम बच्चे मेरी क्लास में घुसते ही सिर्फ अपनी

सुन्दर चमकती आँखों से ही नहीं अपितु शरीर के हर अंग से जैसे खिल उठते थे। वह एहसास इन डिग्री कॉलेजों में मुझे नहीं मिलेगा।" (पृ० 47-48)

मैडम कुमार के ये शब्द उसके व्यक्तित्व की समग्र झाँकी उपस्थित करने में समर्थ हैं।

हम ज्यों-ज्यों इस कहानी को पढ़ते जाते हैं–त्यों-त्यों हमारी संवेदना भी उजागर होती हुई तीव्र होती जाती है।

निष्कर्षतः इस कहानी में बड़ा हृदयस्पर्शी सम्प्रेषण है, जो हमारी संवेदना को भरसक झकझोरता है।

चढ़ा साया डूबा साया

कहानी "चढ़ा साया डूबा साया" में गिरते मानवीय मूल्यों की अक्कासी की गई है। वर्तमान समाज में बदलते एवं गिरते मानवीय मूल्यों से रचना उसके साथ समझौता करके उसके अनुसार अपने आपको ढालने को तैयार हो जाती है क्योंकि वह अपने पति के गज़ेटिड पद पर होते हुए भी सदा अर्थिक तंगी से जूझती रहती है। अतः वह ऐसा करने को विवश है। जबकि उसके पति को उनके कारण फैले भ्रष्टाचार और आत्याचार के कारण उनसे भारी घृणा है वह अभावों और आर्थिक तंगियों का सामना करता हुआ भी आदर्शवाद की ही रट लगाता रहता है। उसका मानना है कि आज समाज में सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाल है। प्रत्येक व्यवसाय के साथ जुड़ा व्यक्ति जैसे-कैसे धन-सम्पत्ति इकट्ठी करने की धुन में है।

उसे जब उसकी पत्नी यह सूचना देती है। उनके पड़ोसी दत्ता ने अपने मकान की दूसरी मंजिल में गृहप्रवेश के मुहूर्त में सम्मिलित होने के लिए उन दोनों को आमन्त्रित किया है तो उसे सुनकर सख्त झुंझलाहट होती है कि बिजली विभाग में एक साधारण क्लर्क दत्ता भ्रष्टाचार की कमाई से धन अर्जित करके मकान की मंजिलें चढ़ा रहा है। इसी से चिढ़ कर वह अपनी पत्नी के सारे तर्कों को खंडित करता हुआ कहता है–"लगे हैं सरकार को चूना लगाने में। खर्च करता है कोई सौ रुपया और सरकार को देता है पाँच रुपया, बीच में रुपये यह गुर्गे ही टूँग लेते हैं। अब तो कार भी ले रहा है यह दत्ता।" (पृ० 50)

अपने पति की आदर्शवादी बातों से बुरी तरह खीझकर रचना झट अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करती हुई कहती है–"होगे तुम निराले। यहाँ तो सभी बहती गंगा में हाथ धो रहे हैं। आप तो शुरू ही से गज़ेटिड पोस्ट पर हैं। ये पीछे-पीछे

क्लर्कों की बीवियाँ रोज नये गहनों और चमकती साड़ियों में मटकती फिरती हैं।'' (पृ० 50)

पर इसके बावजूद वह कभी भी अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध समझौता करने को तैयार नहीं होता है, और इसीलिए न दत्ता के घर जाने को तैयार होता है और न ही अपनी पत्नी को शगुण देने के 100 रुपया देने के लिए राजी होता है। यद्यपि रचना और उसका पति दोनों एक ही छत्त के नीचे रहते हैं पर विचारों के धरातल पर दूर-दूर खड़े हो कर ही अपने-अपने जीवन की गाड़ी आगे धकेलते हैं। जहाँ पति उपभोक्तावादी संस्कृति के दुष्प्रभाव से पूरी तरह से असम्पृक्त रहता है, वहाँ उसकी पत्नी एक गज़ेटिड अधिकारी की पत्नी होते हुई भी अपने आस-पास रहते साधारण क्लर्कों की पत्नियों के ठाट-बाट देखकर आत्मग्लानि की असह्य कुंठा से पीड़ित होकर दुखी रहती है। वह सभी आदर्शों और सिद्धान्तों को तिलाञ्जलि देकर बदलते परिवेश में सभी शान-शौकत और तड़क-भड़क वाली गृहणियों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर चलना चाहती है। बस इन्ही बिन्दुओं पर दोनों का टकराव रहता है। लेखक ने इन्हीं दोनों बिन्दुओं पर दोनों को खड़ा करके हमारे वर्तमान में गिरते सामाजिक और मानवीय मूल्यों की ओर इशारा भी किया है, जिन के आगे एक वर्ग कभी भी झुकने को तैयार नहीं, जब कि दूसरा पूर्णतया उसमें तन्मय हो जाना चाहता है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रचना और उसका पति अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करने हुए चित्रित किए गए हैं। कहानीकार को इस विषय में पूरी सफलता मिली है।

उपलब्धि

यह कहानी चरित्र प्रधान है। इसका परिवेश न तो कश्मीर घाटी है और न ही जम्मू संभाग बल्कि भारत का कोई अन्य भाग है। कहानी का केन्द्र है प्रो० सुधीर, जिसकी भूमिका यह सिद्ध करती है कि यदि आध्यापक चाहे तो वह अपने शिष्य का भाग्य बदल कर उसे कुछ-का-कुछ बना सकता है। कहानी में व्यक्त शिक्षा पद्धति के नमूने से ज्ञात होता है कि यह कहानी देश में 10+2+3 शिक्षा पद्धति की नई विधि पर आधारित है जो अभी लागू ही नहीं हुई थी।

कहानी में चरित्र-चित्रण बड़ा सशक्त है और बीच-बीच में वार्तालाप भी इतने प्रभावशाली हैं कि वे हृदय को भरसक स्पर्श कर जाते हैं।

प्रो० सुधीर, गुरमेल सिंह और गुरमेल का मित्र तीनों चरित्र बड़े जीवन्त हैं।

अपने छात्र जीवन में प्रो० सुधीर की भौतिक शास्त्र की प्रयोगशाला में अपना प्रयोग (Practical) ढंग से न करने पर जब गुरमेल सिंह को प्रो० सुधीर के तीव्र

आक्रोश और व्यंग्य बाणों का सामना करना पड़ता है तो वह अपनी किताबें आदि वहीं पटक कर भाग निकलता है। फिर कई वर्षों के बाद सेना में मेजर बनकर आता है और प्रो० सुधीर के भी तब तक प्रधानाचार्य बन जाने पर उसके पाँव छूकर छात्र जीवन में अपनी गलत हरकतों के लिए क्षमा याचना करता है और प्रो० सुधीर की डाँट रूपी आशीर्वाद के लिए धन्यवाद भी व्यक्त करता है। कहानीकार ने प्रो० सुधीर और गुरमेल सिंह के चरित्र-चित्रण में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। कहानी की कथा- वस्तु बड़ी सहजता से आगे बढ़ती हुई। हमारी उत्सुकता को चरम सीमा तक ले जाती है।

अब खूंटे उखड़ेंगे

इस संग्रह की यह कहानी-''अब खूँटे उखड़ेंगे'' विशेषतया नारी समस्या पर आधारित एक सामाजिक कहानी है। इसका परिवेश जम्मू संभाग का पर्वतीय प्रदेश है। अतैव यह स्पष्टतः एक आँचलिक कहानी भी है क्योंकि इसकी कथावस्तु का ताना-बाना पर्वतीय प्रदेश के सुदूरवर्ती गाँवों के आस-पास के परिवेश में ही बुना गया है।

इस कहानी में डॉ. राजीव के अतिरिक्त रसाल सिंह, उसकी पत्नी काकी और बड़ी बहू, रिटायर्ड हवलदार दीना और उसकी बहू सभी ऐसे चरित्र हैं, जिनका चित्रण करने में कहानीकार को पूर्ण सफलता मिली है। सभी पात्र अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले जीवंत घटक हैं। इस कहानी में लेखक ने नारी जाति पर होने वाले अत्याचारों के मुख्य मुद्दे को ही केन्द्र में रखकर उसे ही उजागर करके समाज को एक सन्देश देकर सचेत करने का प्रयत्न किया है, जिसमें उसे प्रशंसनीय सफलता मिली है। लेखक का मन्तव्य यह तथ्य भी उजागर करता है कि नारी जाति पर होने वाले अत्याचारों के लिए किसी हद्द तक शराबनोशी भी एक कारण है।

इस कहानी में रसाल सिंह और हवलदार दीना के दोहरे चरित्रों का पर्दापाश करने में भी लेखक को पूर्ण सफलता मिली है। लेखक का मानना है कि हमारे समाज में लोगों के बाहरी रूप तो बड़े आदर्शवादी होते हैं, जबकि उनका भीतर इतना दूषित होता है, जिसको ब्यान करना ही कठिन है। क्या रसाल सिंह और उसकी पत्नी लक्ष्मी और क्या रिटायर्ड सूबेदार दीना सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। सभी अपनी बहुओं पर मनमाने अत्याचार, वाचिक और शारीरिक दोनों प्रकार के करते हैं, जिनके पति सेना की नौकरी के कारण अपने घरों से बहुत दूर हैं। ये सभी आदर्शवादिता का छद्म मुखौटा पहन कर अपने-अपने घरों की चारदीवारी के भीतर अपनी-अपनी बहुओं पर मनमाने अत्याचारों द्वारा अपने घिनौने चरित्र का परिचय देते हैं। उन बेचारी असहाय बहुओं के प्रति हमारी संवेदना स्वतः ही जाग जानी स्वाभाविक है।

सूबेदार दीना की बहू जहाँ उसकी मार का शिकार होकर अपने प्राण त्याग देती है, वहां रसालसिंह की बहू, ससुर, सास और ननद के अत्याचारों का निरन्तर शिकार होकर भी डॉ. राजीव की प्रेरणा से अपना अहम् जगाने में सफल ही नहीं हो जाती बल्कि उसे एक निश्चित दिशा मिल जाने से अपना जीवन संभालने में भी सफलता मिलती है।

इस कहानी में बड़ा सशक्त संप्रेषण है तथा यथार्थ अनुभूति की तीव्रता भी बड़े ही स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई है। अत: हम कह सकते हैं यह एक सफल समस्या प्रधान आँचलिक कहानी है।

दूसरी लक्ष्मी बाई

इस कहानी में शराब के नशे की बुराई, गरीबी, छुआछूत आदि कई सामाजिक बुराइयों पर तीखा व्यंग्य अभिव्यक्त किया गया है। कहानी का शीर्षक यद्यपि प्रतीकात्मक है, तो भी समानता के धरातल पर प्रतीक उतना पुष्ट नहीं है।

इस कहानी में यद्यपि मुख्य पात्र हैं-डॉक्टर, उसकी पत्नी निधि, उनका बेटा तुषार, लक्ष्मी बाई और उसका बेटा मुकुल, परन्तु शीर्षक के अनुसार भी और कहानी में उजागर की गई समस्याओं के आधार पर भी कथा-वस्तु का केन्द्र है-लक्ष्मी बाई। लक्ष्मी बाई का पति और मैडम रोज़ी यद्यपि एक प्रकार से गौण पात्र हैं तो भी इन दोनों की इस कहानी कैनवास के भीतर महत्त्वपूर्ण भूमिका है। जहाँ लक्ष्मी का पति अपनी शराबी आदत के कारण खलनायक की भूमिका निभाता है वहाँ मैडम रोज़ी दैवी गुणों से भरपूर है।

डॉक्टर, उसकी पत्नी और बेटा तुषार ऊँची जाति से सम्बन्ध रखते हुए भी अपने सौम्य और उदारतापूर्ण व्यवहार से यह सन्देश देने का प्रयत्न करते हैं कि इस सामाजिक बुराई से उन्हें घृणा है। उनकी उदारता भरा सुधारवादी व्यवहार उनके चरित्र को ऊपर उठाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वे लक्ष्मी बाई और उसके बेटे को एक प्रकार से घर के सदस्य का ही मान देकर अपनी उदारता का परिचय देते हैं। उधर इस कहानी के केन्द्र बिन्दु लक्ष्मी बाई का चरित्र-चित्रण करने में कहानीकार ने अपनी कहानी कला का प्रशंसनीय प्रदर्शन किया है। क्योंकि वह मेहतरानी एवं अछूत है और इसीलिए वह अति सुन्दर और ऊँचे विचारों की होने के बावजूद अपने भीतर गहरे में एक असहाय पीड़ा को दबाकर भी अपने गरीब और शराबी पति की प्रताड़नाएं सहती हुई भी बड़ी दिलेरी के साथ सदा संघर्षरत है। इतना ही नहीं एक आदर्श माँ के नाते उसे अपने इकलौते पुत्र मुकुल का जीवन संवारने की भी हर समय चिन्ता है। इसीलिए वह अपने मुकुल को

हैप्पी माडल स्कूल, जो उस क्षेत्र में सबसे मंहगा स्कूल है, में प्रवेश दिलवाकर ही सन्तोष का अनुभव करती है। यद्यपि स्कूल के फादर की कृपा से बच्चे की फीस चार-सौ रुपये के बजाय दो-सौ रुपये महीना ही है तो भी एक मेहनत-मजदूरी करने वाली और शराब के नशे में धन बरबाद करने वाले एक मेहतर की पत्नी के लिए अपने बजट से हर महीने दो सौ निकालना भी बड़ी ही हिम्मत का काम है। निजी शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा मनमाने ढंग से समय-समय पर फीस बढ़ाते रहने से तो डाक्टर दम्पति भी अपने बेटे तुषार की पढ़ाई की फीस का बोझ उठाने के लिए चिन्तित है। क्यों कि उसे अपने प्रभु यीशु की शक्ति पर पूरी श्रद्धा और विश्वास है। अत: वह उसी के बल पर आगे बढ़ रही है। सम्भवत: उसके प्रभु यीशु की शक्ति पर विश्वास ने उसे अपना प्रसव आसन्न होने पर जब उसे मैडम रोज़ी, जिसने उसे कभी बचपन में पाला था, के बुलावे पर उसके आवास में प्रसव पीड़ा की अनुभूति होती है तो वह प्रार्थना करती है-"प्रभु यीशू, मेरे साथ रहना। मुझे कभी न छोड़ना। मैं आपको एक पल भी नहीं बिसराऊँगी। मुझे ताकत देते रहना। मेरी मैडम को खुश रखना"(पृ०79) तो कुछ आत्मबल की अनुभूति होती है, तो उसी से उसका विश्वास भी दृढ़ हो जाता है। इसी दृढ़ विश्वास के सहारे वह अपने शराबी पति की मार भी झेलती है और उसके द्वारा उसकी मेहनत-मज़दूरी की कमाई का कभी अधिकांश और पूरा भाग छीन लेने पर भी डॉक्टर दम्पति की मदद से अपने और अपने बेटे के खान-पान और पढ़ाई के व्यय का प्रबन्ध कर ही लेती है। फिर अन्तत: जब उसे चर्च के फादर की सहायता से अपने पति द्वारा नौकरी से हट जाने के बाद उसके स्थान पर नौकरी भी मिल जाती है, तो वह अत्यन्त आश्वस्त ही नहीं हो जाती बल्कि उसका आत्म-विश्वास भी बढ़ जाता है। इसीलिए एक दिन अपने शराबी पति द्वारा पिटाई किये जाने पर जबाव में उसकी एक डंडे से इतनी धुनाई करती है कि वह घर से ही भाग निकलता है और फिर जब तीसरे दिन इधर-उधर भटक कर घर लौट आता है तो उसे गर्ज कर कहती है-"खबरदार रहना, एक साथ रहना है तो इन्सान बनकर रह। आज के बाद फिर कभी मुझ पर हाथ उठाया तो याद रख तू सीधा जेल में होगा।" (पृ० 80)

निष्कर्षत: हम यह कह सकते हैं कि इस कहानी में लेखक ने अपने भोगे हुए यथार्थ को पूरी तरह उढेल दिया है। इसीलिए इसके चरित्र अपने-अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करने में पूरी समग्रता से समर्थ हैं और इसीलिए वे हमारे आगे-पीछे घूमते, बातचीत करते और अपनी समस्याओं से जूझते दिखाई पड़ते हैं। लेखक ने इस कहानी के माध्यम से छुआछूत की बुराई, शराबनोशी से होने वाली हानियों तथा निजी शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा फीस के नाम पर की जाने वाली लूट-खसूट से किया जाने वाला बच्चों के अभिभावकों के शोषण का एक स्पष्ट चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है। यह एक सफल कहानी है।

आग लगे बरि जाना

कहानी का ताना-बाना डी. एस. पी. गर्व को केन्द्र में रखकर बुना गया है। कहानी के सारे पात्र एक प्रकार से उसी पर निर्भर होने के कारण उसी के चारों ओर घूमते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। और अन्ततः दुर्घटना से उसकी मृत्यु हो जाने पर कहानी भी सम्पन्न हो जाती है। कहानी का परिवेश दिल्ली के आस-पास का कोई नगर है और समय है सन् 1984 ई० का वह समय जब पंजाब में किए गए 'एक्शन ब्लू स्टार' की प्रतिक्रिया से तत्कालीन प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी की हत्या और उसके परिणाम स्वरूप दिल्ली तथा देश के कुछ अन्य महानगरों में अनेकों की जघन्य हत्याएं।

कहानी का शीर्षक यद्यपि सन्त कबीर के एक पद पर आधारित है, परन्तु इसमें अभिव्यक्त भाव दार्शनिक गंभीरता से अनुप्राणित हैं। परन्तु यह तथ्य चिन्तनीय है कि शीर्षक की अभिव्यक्ति का कहानी की कथा-वस्तु में कहीं भी संकेत न होना उसकी इसके साथ सम्प्रेषणीय संगति नहीं बैठती।

बरगद की छाँव

इस कहानी का परिवेश श्रीनगर से लेकर दिल्ली तक है। 1984 में अपने ही सिख सुरक्षाकर्मी द्वारा जब तत्कालीन प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी की हत्या कर दी जाती है तो दिल्ली में सबसे अधिक उग्र और कुछ अन्य शहरों में अपेक्षाकृत कम उग्र दंगे भड़क उठते हैं। स्थिति यह हो जाती है कि एक विशेष समुदाय का अपने घरों से निकलना ही कठिन हो जाता है। कामकाज की खातिर बाहरी प्रदेशों से आने वालों का दिल्ली में प्रवेश लगभग बंद ही हो जाता है। इसी स्थिति को आधार बनाकर कहानीकार अपनी कहानी की कथा वस्तु का ताना-बाना बुनता है। जिसमें उसे पूर्ण सफलता प्राप्त होती है।

जसवीर, अशोक, रामदयाल और उसकी पत्नी बसन्ती सभी पात्र जीवन्त और संवेदनशील हैं। सभी मानवीय गुणों से परिपूर्ण हैं।

रामदयाल और बसन्ती जहाँ अत्यन्तभावुक और ममतापूर्ण हैं तो वहाँ अत्यन्त संयमी और गम्भीर भी। ऐसे विरोधाभासी गुणों वाले चरित्रों का निर्माण करके कहानीकार ने अपने कुशल कहानी शिल्प का सराहनीय चित्र उपस्थिति किया है।

जसबीर और अशोक जब दिल्ली में इन्दिरा गांधी की हत्या से कुछ दिन पहले श्रीनगर से सेबों से लदा ट्रक लेकर चलते हैं तो सब जगह शांति होती है, पर उनके दिल्ली पहुंचने से पहले ही इन्दिरा गांधी की हत्या हो जाने के तुरन्त बाद दिल्ली दंगों की चपेट में आ जाती है। जसबीर और अशोक को इन चौंका देने वाले

दंगों की सूचना अम्बाला पहुँचने पर ही मिलती है। सुनकर दोनों स्तब्ध रह जाते हैं। वे फिर भी किसी भी प्रकार की भयावह स्थिति का सामना करते हुए दिल्ली पहुँचने का निश्चय करके अपनी यात्रा जारी रखते हैं। पर सोनीपत पहुँचने पर वहां खड़े ट्रकों की एक बहुत बड़ी पंक्ति देखते हैं तो उनके कान खड़े हो जाते हैं। और अपने कुछ ट्रक चालक साथियों से पूछने पर सारी वास्तविक स्थिति से जब पूरी तरह से अवगत हो जाते हैं तो कुछ समय तक अनिर्णय की स्थिति से गुजर कर भी आगे चलने का विचार बना ही लेते हैं। परन्तु पानीपत पहुंच कर और अधिक गम्भीर स्थिति का आभास पाकर जसबीर अपने ट्रक को स्वयं चलाता हुआ सायंकाल की मद्धम रोशनी होने पर एक खेल का मैदान पार करके बाहरी दिल्ली के एक कोने में एक घर के सामने, जिस के अन्दर से रोशनी टिम-टिमाती हुई चमक रही थी, अपना ट्रक खड़ा कर देता है। अशोक जब उस घर का दरवाजा खड़-खड़ाता है तो भीतर से खद्दर का कुरता और धोती धारी एक अधेड़ आयु वाला रामदयाल नामक व्यक्ति जब बाहर आता है तो अशोक उसे अपनी व्यथा-कथा सुनाकर उसके घर में एक-दो दिन के लिए ठहरने के लिए प्रार्थना करता है तो वह सहर्ष उन दोनों को अपने घर के भीतर ले जाकर अपनी पत्नी बसन्ती से उनका परिचय करवा कर उन्हें उनकी दवादारू से लेकर खान-पान आदि तक सब प्रकार की सेवा-सुश्रूषा करने का आश्वासन देता है। उन्हें जब वहाँ वास्तव में ही सब प्रकार की सुविधा के साथ-साथ माता-पिता जैसा प्यार भी प्राप्त होता है तो जसबीर और अशोक भाव विह्वल हो जाते हैं। जसबीर जब एक दिन अपने ज़ख़्मों की पीड़ा से तड़पता हआ 1947 में देश के बंटवारे के समय होने वाले कतलेआम की अपनी माँ से सुनी कहानी याद करता है तो उसका दिल काँप जाता है। और फिर वह उस त्रासदी को अपने समय की त्रासदी के साथ जोड़ता हुआ गाड़ी को बाईपास की ओर मोड़ देता है, क्योंकि कुछ दूरी पर स्थित पैट्रोल-पम्प का मालिक उनका परिचित होने के कारण उन्हें विश्वास है कि वहाँ पहुँच कर वे अपने आपको सुरक्षित पाएंगे परन्तु थोड़ा आगे पहुँचने पर जब वे देखते हैं कि दंगेइ उस ओर जाते ट्रकों को भी रोक-रोक कर उनमें से ड्राइवरों को उतार-उतार कर मार रहे हैं और ट्रकों को भी आग लगाकर भस्मसात् कर रहे हैं। वह भयावह दृश्य देखकर यद्यपि जसबीर और अशोक भयाक्रांत हो जाते हैं तो भी जसबीर ट्रक की गति और तेज करता हुआ आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है, पर बीस-पच्चीस दंगेइ घृणास्पद नारे लगाते आकर उनके ट्रक को भी घेर कर उस पर पथराव शुरू कर देते हैं, जिससे ट्रक के शीशे चूर-चूर होकर कुछ ट्रक के भीतर और कुछ बाहर बिखर जाते हैं। उसके तुरंत बाद एक दंगेइ ड्राइवर की सीट वाली खिड़की खोलकर अपनी तलवार से जसबीर पर वार कर देता है, जिससे

उसका दाहिना कन्धा और दाहिनी पसली बुरी तरह ज़ख्मी हो जाते हैं, परन्तु जसबीर तब भी बड़ी हिम्मत जुटाकर अपने ट्रक को उसी गति से आगे बढ़ाता ही जाता है। आगे चलकर जब उन्हें लगता है कि वे दंगेइयों की पहुँच से दूर निकल चुके हैं तो अशोक अपने फर्स्ट एड बाक्स से सामान निकाल कर रूई से उसके कन्धे और पसली का रक्त पोंछ कर मरहम-पट्टी करके उसे आराम करने के लिए कहता है और इन्सान के साथ शत्रुता के बारे में सोचकर उसका मन अति दुखी और क्षुब्ध हो उठता है। दूसरी ओर इतने विषाक्त और घृणा भरे वातावरण में भी रामदयाल और बसन्ती के ममतापूर्ण व्यवहार से वह और अशोक इतने द्रवित होकर प्रभावित हो जाते हैं कि उनके पास धन्यवाद के लिए भी शब्द ही नहीं होते हैं। निष्कर्षत: इस कहानी में हम मनुष्य के राक्षसी और दैवी दोनों रूप देखते हैं। एक सप्ताह-भर उनके पास रहकर जब उनसे विदा लेकर जसबीर और अशोक चलने लगते हैं तो रामदयाल और बसन्ती का उनके प्रति ममत्व उनके आँसुओं के रूप में फूटता हुआ देखकर वे भी अपने आँसू नहीं रोक पाते हैं। और जब पैट्रोल पम्प पर पहुँचने पर उसका मालिक कहता है बादशाहो वे आदमी नहीं फरिश्ते हैं जो उनसे उनका एक मात्र पुत्र भी छिन जाने पर अपने धैर्य और गम्भीरता को यथावत् बनाए रखते हैं। लेखक ने चरित्रों का चरित्र-चित्रण बड़ी कुशलता से किया है।

''इलाज किसका''

यह कहानी ''निम्मी'' नामक ऐसी लड़की को केन्द्र में रखकर लिखी गई है। जिसे माता-पिता और घर के प्रतिकूल वातावरण ने उसे अर्द्ध विक्षिप्त बना दिया है। निम्मी के चरित्र से यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि वर्तमान समय में भी कई परिवार ऐसी घिसी-पिटी मानसिकता से ग्रस्त हैं, जिसके कारण लड़कियों के प्रति लड़कों की अपेक्षा पक्षपातपूर्ण व्यवहार किया जाता है। इसका कभी-कभी लड़कियों पर इतना दुष्प्रभाव पड़ता है कि उनका सन्तुलन ही बिगड़ जाता है। जब एक ही छत के नीचे पल रहे दो या इससे अधिक भाई-बहनों में से भाइयों की शिक्षा-दीक्षा, उनके जन्म दिनों पर आयोजित समारोहों पर खुले दिल से धन व्यय किया जाता है और बहनों अर्थात् लड़कियों के प्रति इस बारे में पूरी तरह से बेरुखी बरती जाती है तो उनके मन-बुद्धि पर इसका बुरा प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। इस कहानी की निम्मी का भाई निखिल जब इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने के लिए रुड़की भेज दिया जाता है तो उसकी माँ (मौसी) का ध्यान तीन जगह बँट जाता है-भगवत-भजन, अपना पति (मौसा) और पुत्र निखिल। परिणामत: निम्मी एक प्रकार से उसकी ध्यान की सूची से हटा ही दी जाती है। दूसरे शब्दों में वह पूरी तरह उपेक्षित ही हो जाती

है। उसके पिता द्वारा उसे पहले से ही उपेक्षित किया जाना और बाद में मां की ओर से भी उपेक्षित एवं रूखा व्यवहार मिल कर उसके मन-बुद्धि पर इतना घातक प्रभाव कर जाता है कि उसका मानसिक सन्तुलन ही बिगड़ जाता है। परिणाम यह होता है कि वह धीरे-धीरे अर्द्ध विक्षिप्तावस्था को पहुँच जाती है।

इस कहानी को पढ़ते समय हमारी सहानुभूति भरसक निम्मी के प्रति बढ़ जाती है, जबकि उसके माता-पिता के प्रति हमारा आक्रोश तीव्र हो जाता है। कहानीकार को निम्मी का चरित्र-चित्रण तो मनोवैज्ञानिक कसौटी पर किया है, उसकी मां और पिता के चरित्र-चित्रण में उसे इसलिए कम सफलता मिली है क्योंकि वर्तमान समय में ऐसे पिल-पिले और मरियल एवं एकरुखिये चरित्र हमारी घृणा के पात्र ही बनते हैं। निम्मी के माता-पिता में न हम गतिशीलता देखते हैं, न युग के साथ चलने का उत्साह। आखिर जिस कृष्ण की हम भक्ति करते हैं उसके आचरण और कथन पर भी तो हमें ध्यान देना चाहिए। वह तो हमें कर्म करने और कर्त्तव्य पालन करने की प्रेरणा देते हैं।

निम्मी के इलाज के लिए डाक्टर का आते ही सफेद कुर्ते और पायजामे में मौसा को घूमते हुए देखकर भूत समझ लेना भी अटपटा लगता है। कम-से-कम डाक्टरी के व्यवसाय वाले व्यक्ति को भूत जैसे एक प्रकार से काल्पनिक तत्वों के बारे में सोचना भी नहीं चाहिए। अत: एक डाक्टर के दिमाग में ऐसी कल्पना का आना ही हास्यास्पद है। फिर कहानीकार कहानी की समाप्ति भी इस ढंग से करता है कि लगता है कि कहानी अपूर्ण है। निष्कर्षत: हम कह सकते हैं यह कहानी स्तरीय कहानियों से बहुत पीछे है।

'प्लेटफार्म' कहानी इस संग्रह की अन्तिम कहानी है। क्योंकि इस कहानी का सृजन ट्रेन के प्लेटफार्म के अत्यन्त सीमित परिवेश के एक भाग पर किया गया है, अत: इसमें कथावस्तु का वस्तुत: अभाव ही है, परन्तु इस अभाव की पूर्ति कहानीकार इसमें गहन संवेदनशीलता की उद्भावना करके इसे श्रेष्ठ कहानी के धरातल पर लाकर खड़ा कर देता है। वैसे वर्तमान में हिन्दी कथावस्तु रहित कहानियां लिखने की प्रवृत्ति का भी प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

इस कहानी में मिश्रा और विभूति बाबू केवल दो ही चरित्र हैं। दोनों ही जीवन्त, गतिशील और अति संवेदनशील हैं। कभी दोनों एक ही कार्यालय में काम करते थे।

विभूति बाबू को दस वर्ष विवाहित जीवन व्यतीत करने के बाद पुत्र की प्राप्ति होती है। विभूति बाबू उसे पूरी सावधानी से पढ़ा-लिखा कर इंजीनियरिंग तक शिक्षा

दिलवाते हैं, परन्तु दुर्भाग्य से स्वीमिंग पूल में डूबने से उसकी दुखद मृत्यु के कारण विभूति बाबू और उनकी पत्नी अति दुखी हो जाते हैं। उसी का ग़म भुलाने के लिए विभूति बाबू प्लेटफार्म पर एक रेढ़ी पर पानी के घड़े रख कर आने-जाने वालों को पानी पिला-पिलाकर मन में सन्तोष अनुभव करते हैं तथा पुत्र वियोग से होने वाले गम को भी भुलाने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिए वह कहते हैं-"अचानक अन्दर से आवाज़ आई कि मेरे जैसे कितने यहाँ प्यास से तड़पते होंगे, क्यों न उनकी प्यास बुझाऊं।" (पृ 119)

उसकी इस भावाभिव्यक्ति के उत्तर में मिश्रा के ये शब्द भी विचारणीय हैं- क्षमा करना विभूति बाबू, आपकी दुखती रग मैंने अनायास छेड़ दी। पर सच मानिए, मैंने इन दो घंटों में बहुत कुछ पाया है आपसे। मुझे लगता है कि दुख ने आपको बिगाड़ा नहीं संवारा है। जिन्दगी जीने का जो रास्ता आपने चुना है, उससे बेहतरीन कुछ हो ही नहीं सकता था।" (पृ० 120)

इस प्रकार उपर्युक्त सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस कहानी संग्रह की अधिकांश आधुनिक कहानी कला की पूर्णतया अक्कासी करती हैं। इनमें से तीन-चार कहानियां तो मन्नु भंडारी, शिवानी, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर जैसे उच्च कोटि के कहानीकारों की कहानियों के साथ सम्यता रखने का भी दम भरती हैं।

इन कहानियों में कहानीकार ने सर्वभावेन उग्रवाद, बालमनोविज्ञान, नशाखोरी, रिश्वतखोरी, नारी समस्या, मानवीय संवेदना एवं मानवीय सहजता, मध्य वित्त समाज की दुधारी तलवार पर चलने जैसी स्थिति आदि अनेक समस्याओं को अपनी कला के माध्यम से उकेरा है। इसीलिए ये कहानियाँ पाठकों को जहाँ रुलाने की भी और हँसाने की भी सामर्थ्य रखती हैं, वहाँ कई कहानियाँ तो हमें भरसक झकझोरने की भी सामर्थ्य रखती हैं। कई कहानियों में कहानी शिल्प और चरित्र-चित्रण उच्चकोटि का है।

जहाँ तक इन कहानियों की भाषा का प्रश्न है उस बारे में हम यही कहेंगे कि इनकी भाषा चुस्त, चलती-फिरती प्रांजल तथा प्रांजल होते हुए भी आसानी से बोधगम्य है। आसानी से सब की समझ में आने वाली, मुहावरेदार और कहीं-कहीं अर्थ-गाम्भीर्य युक्त है, हाँ कहीं-कहीं प्रूफ की अशुद्धियां और भाषा के स्वभाव के विरुद्ध शब्दों के प्रयोग अखरते अवश्य हैं।

०००